१४

आत्म-जागरण

भक्ति-मार्ग के एक यशस्वी आचार्य ने कभी तरंग में आकर गाया था—

"नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं, नमस्तुभ्यं नमोनमः।
नमो मह्यं नमो मह्यं, मह्यमेव नमोनमः॥"

श्लोक के पूर्वार्द्ध में लगता है, आचार्य किसी बाह्य-शक्ति के चरणों में सिर झुका रहे हैं। इसलिए वे बार-बार 'तेरे चरणों में नमस्कार' की रट लगा रहे हैं, वे द्वैत के प्रवाह में बह रहे हैं। ऐसा लगता है कि भक्त कहीं बाहर में खड़े भगवान् को रिझाने का प्रयत्न कर रहा है। किन्तु श्लोक का उत्तरार्द्ध आते ही, लगता है, भक्त की आत्मा जागृत हो जाती है, वह सम्भल जाता है—"अरे! मैं किसे वन्दना करता हूँ? मेरा भगवान् बाहर कहाँ है? मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा या उपाश्रय से मेरे भगवान् का क्या सम्बन्ध है? मेरा भगवान् तो मेरे भीतर ही बैठा है। मैं ही तो मेरा भगवान् हूँ। अतः अपने को ही अपना नमस्कार है।" इस स्थिति में वह उत्तरार्द्ध पर आते-आते बोल उठता है—

"नमो मह्यं नमो मह्यं, मह्यमेव नमोनमः।"

मुझे ही मेरा नमस्कार है। अपने को अपना नमस्कार करने का अर्थ है कि साधक आत्म-जागृति के पथ पर आता है, चूंकि उसकी आत्मा और परमात्मा के बीच की खाई पाटने वाला तत्त्व अब स्पष्ट होने लग जाता है। वह भेद से अभेद की ओर, द्वैत से अद्वैत की ओर बढ़ चलता है।

अद्वैत की भूमिका :

भारत की सांस्कृतिक परम्पराएँ और साधनाएँ इसी आदर्श पर चलती आई हैं। वे द्वैत से अद्वैत की ओर बढ़ी हैं, स्थूल से सूक्ष्म की ओर मुड़ी हैं। बच्चे को जब सर्वप्रथम वर्णमाला सिखाई जाती है, तो आरम्भ में उसे बड़े-बड़े अक्षरों के द्वारा अक्षर-परिचय कराया जाता है, जब वह उन्हें पहचानने लग जाता है, तो छोटे अक्षर पढ़ाए जाते हैं और बाद में संयुक्त अक्षर। यदि प्रारम्भ से ही उसे सूक्ष्म व संयुक्त अक्षरों की किताब दे दें, तो वह पढ़ नहीं सकेगा, उलटे ऐसी पढ़ाई से ऊब जाएगा। यही दशा साधक की है। प्रारम्भ में उसे द्वैत की साधना पर चलाया जाता है। बाह्य रूप में की गई प्रभु की वन्दना, स्तुति आदि के द्वारा अपने भीतर में सोए हुए प्रभु को जगाया जाता है। साधक अपनी दुर्बलताओं, गलतियों का ज्ञान करके उन्हें प्रभु के समक्ष प्रकाशित करता है। प्रकाशित करना तो एक बाह्य भाव समझिए; वास्तव में तो वह प्रभु की निर्मल विशुद्ध आत्म-छवि से अपना मिलान करता है, तुलना करता है और उस निर्मलता के समान ही अपनी अन्तःस्थित शुद्धता, निर्मलता को उद्घाटित करने के लिए विभाव-गत मलिनता को दूर करने का प्रयत्न करता है। जब तक घटिया-बढ़िया दो वस्तुओं को बराबर में रखकर तुलनात्मक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परीक्षण नहीं किया जाए, तब तक उनकी वास्तविकता नहीं खुलती। साधक जब दूर-दूर तक अपनी दृष्टि को ले जाता है और देख लेता है कि अब परमात्मा की छवि में और मेरी छवि में कोई भेद नहीं दीखता है, तो फिर वह लौटकर अपने अन्दर में समा जाता है। वह बाहर से भीतर आ जाता है, स्थूल से सूक्ष्म की ओर आ जाता है और तब वह **'नमस्तुभ्यं'** की जगह **'नमोमह्यं'** की धुन लगा बैठता है।

लक्ष्य की ओर :

साधकों के जीवन वृत्त से और उनकी समस्याओं से मालूम होता है कि हर एक साधक के लिए यह सरल नहीं है कि वह झटपट **'नमस्तुभ्यं'** से मुड़कर **'नमो मह्यं'** की ओर आ जाए। शास्त्रों में इन दोनों ही विषयों की चर्चा की गई है। हमारे पास धर्म-शास्त्र, पुराण, आगम प्रकरण आदि की कोई कमी नहीं है, उनका बहुत बड़ा विशाल भण्डार है। साधारण साधक की बुद्धि तो उसमें उलझ ही जाती है, उसके लिए शास्त्र एक बीहड़ जंगल के समान हो जाता है। पृथ्वी के जंगलों की एक सीमा होती है, किन्तु शब्दों और शास्त्रों के महावन की कोई सीमा नहीं है। इस असीम कानन में हजारों यात्री भटक गए हैं, नए यात्री भटकते हैं सो तो हैं ही, किन्तु पुराने और अनुभवी कहे जाने वाले साधक भी कभी-कभी दिग्मूढ़ हो जाते हैं। शास्त्रों में उदाहरण आता है कि कोई-कोई साधक चौदह पूर्व का ज्ञान पाकर भी इस शास्त्र वन में भटक जाते हैं। आचार्य शंकर ने कहा है—

"शब्दजालं महारण्यं, चित्तभ्रमण कारणम्।"

शब्दों का यह महावन इतना भयंकर है कि एक बार भटक जाने के बाद निकलना कठिन हो जाता है। इसलिए हमें शास्त्रचर्चा की अपेक्षा अनुभव की बात करनी चाहिए। भक्ति मार्ग एक उपवन है, जिसमें घूमने के लिए सहज आकर्षण रहता है, लेकिन हमेशा ही बगीचे में घूमते रहना तो उपयुक्त नहीं है। पड़ोसी से बात करने के लिए जब कोई घर का द्वार खोलकर बाहर जाता है, तो वह बाहर ही नहीं रह जाता, बल्कि लौटकर पुनः घर में आता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् में भी हमारी स्थिति सिर्फ बाहर चक्कर लगाते रहने की ही नहीं है, हमें लौटकर अपने घर में आना चाहिए। चिरकाल तक बाहर घूमे हैं, अतः हम अपने घर में भी अनजाने से हो गए हैं। इसके लिए आत्मज्ञान की लौ जगाकर अपने घर को देखना होगा। आत्म-विश्वासपूर्वक अपनी अनन्त शक्तियों का ज्ञान करना होगा।

मंजिल और मार्ग :

सबसे पहले यह जानना होगा कि हमारी मंजिल क्या है? और, उसका मार्ग क्या है? हमें कहाँ जाना है, और जा कहाँ रहे हैं, यह निर्धारित करना होगा। हमारी सबसे ऊँची मंजिल है परमात्मपद! वह अन्तिम अनन्त शिखर—जहाँ पहुँचने के बाद वापिस नहीं लौटना होता। अन्तर्मुख साधना के महान् पथ पर हमें तब तक चलना है, जब तक कि मंजिल को नहीं पा लें। हम वे यात्री हैं, जिनको सतत चलना ही चलना होता है, बीच में कहीं विश्राम नहीं होता। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने ठीक ही कहा है—

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है,
श्रांत भवन में टिक रहना।
किन्तु, पहुँचना उस सीमा पर,
जिसके आगे राह नहीं।"

मार्ग में सतत चलना है, जबतक कि अपना लक्ष्य नहीं आ जाए। कहीं हरे-भरे उपवन की मोहकता भी आएगी और कहीं सूखे पतझड़ की उद्विग्नता भी। किन्तु हमें दोनों मार्गों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से ही समभावपूर्वक गुजरना है। कहीं अटकना नहीं है। स्वर्ग की लुभावनी सुषमा और नरक की दारुण यातना—दोनों पर ही विजय पाकर हमें अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाना है। सर्वत्र हमें अपने प्रकाश-दीप—सम्यक्-दर्शन को छोड़ना नहीं है। सम्यक्-दर्शन ही हमारे मार्ग का दीपक है।

एक जैनाचार्य ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि कोई यह शर्त रखे कि तुम्हें स्वर्ग मिलेगा, और दूसरी ओर यह बात कि यदि सम्यक्-दर्शन पाते हैं तो नरक की ज्वाला में जलना होगा, उसकी भयंकर गन्दगी में सड़ना पड़ेगा, तो हमें इन दोनों बातों में से दूसरी बात ही मंजूर हो सकती है। मिथ्यात्व की भूमिका में स्वर्ग भी हमारे किसी काम का नहीं, जबकि सम्यक्-दर्शन के साथ नरक भी हमें स्वीकार है। आचार्य की इस उक्ति में लक्ष्य के प्रति कितना दीवानापन है! निछावर होने की कितनी बड़ी प्रबल भावना है!

इसके पीछे सैद्धान्तिक दृष्टिकोण, जिसे कि आचार्यों ने कहा है—वह यह है कि हमें नरक और स्वर्ग से, सुख और दुःख से कोई प्रयोजन नहीं है। हमारा प्रयोजन तो परमात्म-शक्ति के दर्शन से है। या यों कहिए कि आत्मशक्ति के दर्शन से है, सम्यक्-दर्शन से है। जीवन की यात्रा में सुख-दुःख यथाप्रसंग दोनों आते हैं, परन्तु हमें इन दोनों से परे रहकर चलने की आवश्यकता है। यदि मार्ग में कहीं विश्राम करना हो, तो कोई बात नहीं, कुछ समय के लिए अटक गए, विश्राम किया, किन्तु फिर आगे चल दिए। कहीं डेरा डाल कर नहीं बैठना है। चलते रहना ही हमारा मन्त्र है। ब्राह्मण ग्रन्थों में एक मन्त्र आता है—

"....चरैवेति, चरैवेति।"

चलते रहो, चलते रहो। कर्तव्य पथ में सोने वाले के लिए कलियुग है, जागरण की अंगडाई लेने वाले के लिए द्वापर है, उठ बैठने वाले के लिए त्रेता है और पथ पर चल पड़ने वाले के लिए सतयुग है, इसलिए चलते रहो, चलते रहो। चलते रहने वाले के लिए सदा सतयुग रहता है। संसार में यदि कोई कहीं डेरा जमाना भी चाहे, तो महाकाल किसी को कहाँ जमने देता है? तो फिर कहीं उलझने की चेष्टा क्यों की जाए? जीवन में सुख के फूलों और दुःख के काँटों में उलझने की जरूरत नहीं है, इन सबसे निरपेक्ष होकर आत्मशक्ति को जागृत किए चलना है। आत्मशक्ति का जागरण जब होगा, तब अपने प्रति अपना विश्वास जगेगा। आत्मा के अन्तराल में छिपी अनन्त शक्तियों के प्रति निष्ठा पैदा होने से ही आत्म-शक्ति का जागरण होता है।

जैन-सूत्रों में ऐसा वर्णन आता है कि आत्मा के एक-एक प्रदेश पर कर्मों की अनन्तानन्त वर्गणाएँ छाई हुई हैं। अब देखिए कि आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, और प्रत्येक प्रदेश पर अनन्तानन्त कर्म वर्गणाएँ चिपकी बैठी हैं। मनुष्य अवश्य ही घबरा जाएगा कि किस प्रकार मैं कर्मों की अनन्त सेना से लड़ सकूँगा? और, कैसे इन बन्धनों को तोड़ कर मुक्त बन सकूँगा? किन्तु, जब वह अपनी आत्मशक्ति पर विचार करेगा, तो अवश्य ही उसका साहस बढ़ जाएगा। जैन-दर्शन ने बताया है कि जिस प्रकार एक पक्षी पंखों पर लगी धूल को पंख फड़फड़ा कर एक झटके में दूर कर देता है, उसी प्रकार साधक भी अनन्तानन्त कर्म बन्धनों को, एक झटके में तोड़ सकता है। पलक मारते ही, जैसे पक्षी के पंखों की धूल उड़ जाती है, त्यों ही आत्म-विश्वास जागृत होते ही, कर्म-वर्गणा की जमी हुई अनन्त तहें एक साथ ही साफ हो जाती हैं। आज के वैज्ञानिक युग में तो इस प्रकार का संदेह ही नहीं करना चाहिए कि कुछ ही क्षणों में किस प्रकार अनन्त कर्म बन्धन छूट सकते हैं, जबकि विज्ञान के क्षेत्र में पलक मारते ही संसार की परिक्रमा करने वाले राकेट, और क्षण भर में विश्व को भस्मसात करने वाले बमों का आविष्कार हो चुका है। यांत्रिक वस्तुओं की क्षमता तो सीमित है, परन्तु आत्मा की शक्ति अनन्त है, उसकी शक्ति की कोई सीमा नहीं है। अवधिज्ञान और मनः-पर्यायज्ञान में यह शक्ति है कि वह एक मिनट के असंख्यातवें भाग में भी सुदूर विश्व का ज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर लेता है। हाथ की रेखाओं की तरह संसार की भौतिक हलचलें, उनके सामने स्पष्ट रहती हैं। केवलज्ञान की शक्ति तो उनसे भी अनन्तगुनी अधिक है, उसका कोई पार ही नहीं है।

आत्म-विश्वास का चमत्कार :

जिस जीवन यात्री का, अपने पर भरोसा होता है, आत्म-शक्ति पर विश्वास होता है, वह कहीं बाहर में नहीं भटकता। वह अपनी गरीबी का रोना कहीं नहीं रोता। उसके अन्दर और बाहर में सर्वत्र आत्म-विश्वास की रोशनी चमकने लग जाती है। जितने भी शास्त्र हैं, गुरु हैं, सब शिष्य के सोए हुए आत्म-विश्वास को जगाने का प्रयत्न करते हैं। रामायण में एक वर्णन आता है कि जब हनुमान राम के दूत बनकर लंका में पहुँचे, तो राक्षसों के किसी भी अस्त्र-शस्त्र से वे पराजित नहीं हुए। किन्तु, आखिर इन्द्रजीत के नागपाश में बंध गए। और, जब रावण की सभा में लाए गए, तो रावण ने व्यंग्य किया।

"हनुमान! तुम हमारे पीढ़ियों के गुलाम होकर भी आज हमसे ही लड़ने आए हो। यदि तुम दूत बनकर नहीं आए होते, तो तुम्हारा वध कर दिया जाता। किन्तु, दूत अवध्य होता है, अतः अब तुम्हें तुम्हारा मुँह काला करके नगर से बाहर निकाला जाएगा।"

हनुमान ने जब यह सुना तो उसका आत्मतेज हुँकार कर उठा। उसने सोचा —यह अपमान हनुमान का नहीं, राम का है; मैं तो उन्हीं का दूत हूँ। शरीर मेरा है, आत्मा तो राम की है। भक्त में हमेशा ही भगवान् की आत्मा बोला करती है, तो मैं अपने भगवान् का यह अपमान कैसे सह सकता हूँ? बस हनुमान में आत्मा की वह शक्ति जगी कि एक झटके में ही वह नागपाश को तोड़कर मुक्त आकाश में पहुँच गए। हनुमान जब तक नागपाश की शक्ति को अपनी शक्ति से बढ़कर मानते रहे, तब तक नागपाश में बँधे रहे। और, जब हनुमान को नागपाश की शक्ति से बढ़कर अपनी शक्ति का भान हुआ, तो नागपाश को टूटते कुछ भी समय नहीं लगा।

यह स्थिति केवल रामायण के हनुमान की ही नहीं है, किन्तु प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक प्राणी की है। जब तक उसे अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं है, तब तक वह दुर्बलता के हाथों का खिलौना बना रहता है, किन्तु जब आत्मशक्ति का विश्वास हो जाता है, अपने अनन्त शौर्य का भान हो जाता है, तब वह किसी के अधीन नहीं रहता। मनुष्य को अपनी दीन-हीन स्थिति पर निराश न होकर, अपनी आत्मशक्ति को जगाने का प्रयत्न करना चाहिए। जितने भी महापुरुष संसार में हुए हैं, उन सबने अपनी आत्मशक्ति को जगाया है और इसी के सहारे वे विकास की चरम कोटि पर पहुँचे हैं। उन सबका यही संदेश है कि अपनी आत्मशक्ति को जगाओ। आत्म-जागरण ही तुम्हारे विकास का प्रथम सोपान है।

संकल्प-बल :

भारतीय दर्शन का एक मात्र स्वर रहा है—क्या थे, इसकी चिन्ता छोड़ो, क्या हैं, इसकी भी चिन्ता न करो, लेकिन यह सोचो कि क्या बनना है। क्या होना है, इसका नक्शा बनाओ, रेखाचित्र तैयार करो, अपने भविष्य का संकल्प करो। जो भवन बनाना है, उसका नक्शा बनाओ, रेखाचित्र तैयार करो और पूरी शक्ति के साथ जुट जाओ, उसे साकार बनाने में।

संकल्प कच्चा धागा नहीं है, जो एक झटका लगा कि टूट जाए। वह लौह-शृंखला से भी अधिक दृढ़ होता है। झटके लगते जाएँ, तूफान आते जाएँ, पर संकल्प का सूत्र कभी टूटने न पाए। दिन पर दिन बीतते चले जाते हैं, वर्ष पर वर्ष गुजरते जाते हैं, और तो क्या, जन्म के जन्म बीतते जाते हैं, फिर भी साधक स्वीकृत पथ पर चलता जाता है, अटूट श्रद्धा एवं संकल्प का तेज लिए हुए। चलने वाले को यह चिन्ता नहीं रहती कि लक्ष्य अब कितना दूर रहा है! वह तो चलता ही रहता है, एक न एक दिन लक्ष्य मिलेगा ही, इस जन्म में नहीं, तो अगले जन्म में। संकल्प सही है, तो वह पूरा होकर ही रहेगा। उसके लिए प्रयत्न अवश्य किया जाता है, परन्तु समय की सीमा नहीं होती। मृत्यु का भय भी नहीं होता। संकल्प

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकर चलने वाले के लिए मृत्यु सिर्फ एक विश्राम है। एक पटाक्षेप है। वह जहाँ भी है, चलता रहता है, नया जन्म धारण करेगा, तो वहाँ भी उसकी यात्रा रुकेगी नहीं, मार्ग बदलेगा नहीं, वह फिर अगली मंजिल तय करने को साहस के साथ चल पड़ेगा।

भगवान् महावीर ने कहा है—साधक! तुम अपनी यात्रा के महापथ पर चलते-चलते रुक जाते हो, तो कोई भय नहीं, पैर लड़खड़ा जाते हैं, तो घबराने की कोई बात नहीं। संकल्प से डिगो मत, वापस लौटो मत! यदि कहीं कुछ क्षण रुक गए, बैठ गए, तो क्या है? कुछ देर विश्राम किया, फिर उठो, फिर चलो। चलते रहो! निरन्तर चलते रहो!

बालक चलता है, लड़खड़ाकर गिर भी जाता है, उठता है और फिर गिरता है। पर, उसकी चिन्ता नहीं की जाती। चरण सध जाएँगे तो एक दिन वही विश्व की दौड़ में सर्वश्रेष्ठ होकर आगे आ जाएगा। मतलब यह है कि जो चलता है, वह एक दिन मंजिल पर अवश्य पहुँचता है, किन्तु जो मार्ग में थक कर लमलट हो जाता है, चारों-खाने-चित हो जाता है, वह कभी भी आगे नहीं बढ़ सकता! साधक को संकल्प की लौ जलाकर चलते रहना है, बढ़ते रहना है। फिर उसकी यात्रा अधूरी नहीं रहेगी, उसका संकल्प असफल नहीं रहेगा।

एक विचारक ने कहा है कि—यदि तुम्हारी यह शिकायत है कि इच्छा पूरी नहीं हुई, तो इसका मतलब है कि तुम्हारी इच्छा पूरी थी ही नहीं, अधूरी इच्छा लेकर ही तुम चल पड़े थे। पूरी इच्छा एक दिन अवश्य पूरी होती है। वह भीतर से अपने आप बल जागृत करती हुई पूर्णता की ओर बढ़ी जाती है। पूरी इच्छा में स्वतः ही बल जागृत हो जाता है।

सच्ची निष्ठा :

आज के साधक-जीवन की यह सबसे बड़ी विडम्बना है कि वह चलता तो है, पर उसके चरणों में श्रद्धा और निष्ठा का बल नहीं होता। चलने की सच्ची भूख उसमें नहीं जग पाती। कर्म करता जाता है, किन्तु सच्ची निष्ठा उसके अन्दर जागृत नहीं होती। ऐसे चलता है, जैसे घसीटा जा रहा हो, संशय, भय, अविश्वास के पद-पद पर लड़खड़ाता-सा। ऐसा लगता है कि कोई जीर्ण-शीर्ण दीवार है, अभी एक धक्के से गिर पड़ेगी, कोई सूखा कंकाल वृक्ष है, जो हवा के किसी एक झोंके से भूमिसात् हो जाएगा। किंतु जिसके अंदर सच्ची निष्ठा का बल है, वह महापराक्रमी वीर की भाँति सदा सीना ताने, आगे ही आगे बढ़ता जाता है। और, मंजिल एक दिन उसके पाँव चूमती है।

संशय : जीवन का खतरनाक बिन्दु :

तैत्तिरीय ब्राह्मण का स्वाध्याय करते समय एक सूक्त दृष्टिगोचर हुआ **"श्रद्धा प्रतिष्ठा लोकस्य देवी"**—श्रद्धा देवी ही विश्व की प्रतिष्ठा है, आधारशिला है। यदि यह आधार हिल गया, तो समूचा विश्व डगमगा जाएगा। भूचाल आते हैं, तो हमारे पुराने पंडित लोग कहते हैं, शेषनाग ने सिर हिलाया है। मैं सोचता हूँ, साधक जीवन में जब-जब भी उथल-पुथल होती है, गड़बड़ मचती है, तब अवश्य ही श्रद्धा का शेषनाग अपना सिर हिलाता है। अवश्य ही कहीं वह स्खलित हुआ होगा, उसका कोई आधार शिथिल हुआ होगा।

पति-पत्नी का, पिता-पुत्र का सबसे निकटतम सूत्र भी विश्वास के धागों से निर्मित हुआ है, और राष्ट्र-राष्ट्र का विराट् सम्बन्ध भी इसी विश्वास के सूत्र से बँधा हुआ है। मैं पूछता हूँ, पति-पत्नी कब तक पति-पत्नी हैं? जब तक उनके बीच स्नेह एवं विश्वास का सूत्र जुड़ा हुआ है। यदि पति-पत्नी के बीच संशय आ जाता है, मन में अविश्वास हो जाता है, तो वे एक दिन एक-दूसरे की जान के ग्राहक बन जाते हैं। सामाजिक मर्यादावश वे जीते-जी भले ही साथ रहते हैं, परन्तु ऐसे रहते हैं, जैसे कि एक ही जेल की कोठरी में दो दुश्मन साथ-साथ रह रहे हों। घर, परिवार, समाज और राष्ट्र के हरे-भरे उपवन वीरान हो जाते हैं, बर्बाद हो जाते हैं, संशय एवं अविश्वास के कारण। विश्व में और खासकर भारत में आज जो संकट छाया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, वह विश्वास का संकट है, श्रद्धा का संकट है। आज किसका भरोसा है कि कौन किस घड़ी में बदल जाएगा? समर्थक विरोधी बन जाएँगे, इकरार इन्कार में बदल जाएँगे? अविश्वास के वातावरण से समूचा राष्ट्र दिशाहीन गति-हीन हुआ जा रहा है। जीवन अस्त-व्यस्त-सा बिखर रहा है। मैं आपसे कहता हूँ, यह निश्चय समझ लीजिए, जब तक मन में से अविश्वास एवं संशय का भाव समाप्त नहीं होगा, तब तक राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकेगा, भुख-मरी और दरिद्रता से मुक्ति नहीं पा सकेगा। अमेरिका और रूस की सहायता पर आप अधिक दिन नहीं जी सकते। आपके जीने का अपना आधार होना चाहिए। सोने के लिए पड़ोसी की छत मत ताकिए, आखिर अपनी छत ही आपके सोने के काम में आ सकती है। अपना बल ही आपके चलने में सहयोगी होगा। और, वह बल कहीं और स्थान से नहीं, आपके ही हृदय के विश्वास से, निष्ठा से प्राप्त होगा।

हमारा जीवन कीड़े-मकोड़ों की तरह अविश्वास की भूमि पर रेंगने के लिए नहीं है। आस्था के अनन्त गगन में गरुड़ की भाँति उड़ान भरने के लिए है। हम भविष्य के स्वप्न देखने के लिए हैं, सिर्फ देखने के लिए ही नहीं, स्वप्नों को साकार करने के लिए हैं।

श्रद्धा का बीज :

श्रद्धा का बीज मन में डालिए, फिर उस पर कर्म की वृष्टि कीजिए। तथागत बुद्ध ने एकबार अपने शिष्यों से कहा था—भिक्षुओ! श्रद्धा का बीज मन की उर्वर-भूमि में डालो, उस पर तप की वृष्टि करो, सुकृत का कल्पवृक्ष तब स्वयं लहलहा उठेगा—**"सद्धा बीजं तपो वुट्ठी।"**

भारतीय जीवन आस्थावादी जीवन है, उसका तर्क भी श्रद्धा के लिए होता है। मैं आपसे निरी श्रद्धा—जिसे आज की भाषा में अन्धश्रद्धा (ब्लाइण्ड फैथ) कहते हैं, उसकी बात नहीं करता। मैं कहता हूँ जीवन के प्रति, अपने भविष्य के प्रति विवेकप्रधान श्रद्धाशील होने की बात! अपने विराट् उज्ज्वल भविष्य का दर्शन करना, उस ओर निष्ठापूर्वक चल पड़ना, चलते रहना, यही मेरी श्रद्धा का रूप है। यही भारत का गरुड़ दर्शन है। हमारे जीवन में अपने हीनतावादी मन्थरा का दर्शन नहीं आना चाहिए।[1] अपने भविष्य को अपनी उन्नति एवं विकास की अनन्त संभावनाओं को क्षुद्र दृष्टि में बन्द नहीं करना है, किन्तु उसके विराट् स्वरूप का दर्शन करना है और फिर दृढ़ निष्ठा एवं दृढ़ संकल्प का बल लेकर उस ओर चल पड़ना है; लक्ष्य मिलेगा, निश्चित मिलेगा। एक बार विश्वास का बल जग पड़ा, तो फिर इन क्षुद्रता के बन्धनों के टूटने में क्या देरी है—**"बद्धो हि नलिनीनालैः ,कियत् तिष्ठति कुञ्जरः.... ?"** कमल की नाल से बँधा हुआ हाथी कितनी देर रुका रहेगा? जब तक चलने का संकल्प न जगे, अपने चरण को गति नहीं दे, तब तक ही न! बस, चरण बढ़े कि बन्धन टूटे। आप भी जब तक श्रद्धा से चरण नहीं बढ़ाते हैं, संशय से विश्वास की ओर नहीं मुड़ते हैं, तब तक ही यह बन्धन है, यह संकट है! बस, सच्चे विश्वास ने गति ली नहीं कि बन्धन टूटे नहीं, और जैसे ही बन्धन टूटे कि मुक्ति सामने ही खड़ी है, स्वागत में।

●

१. हमहूँ कहब अब ठकुर सुहाती। नाहीं तो मौन रहब दिन राती।
तथा
कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरी छाड़ि कि होइब रानी।
—रामचरित मानस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org